INTERNATIONAL JOURNAL OF ENHANCED RESEARCH IN EDUCATIONAL DEVELOPMENT
VOL. 1, ISSUE 2, MARCH - 2013 ISSN NO: 2320-8708

महाभारत में उपदेशात्मक तत्व

डॉ. संजू गर्ग
व्याख्याता संस्कृत,
राजकीय महाविद्यालय, गोविन्दगढ़

भगवान कृष्ण द्वैपायन व्यास रचित महाभारत भारतीय उपदेशात्मक साहित्य का अनमोल रत्न है। इस महाकाव्य के लक्ष्य व साधन महान एवं विलक्षण है। इसका स्वरूप भी अत्यन्त गम्भीर, मधुर एवं नीति परक है। मानव जीवन के परम कल्याणार्थ ही मानो इस ग्रन्थ रूपी रत्न का आविर्भाव संस्कृत साहित्यरूपी सागर में हुआ है।

पुरूषार्थ चतुष्ट्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का जो सांगोपांग वर्णन इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है। वह अन्यत्र दुर्लभ है। धर्म, आध्यात्म, नीति, लोक–परलोक ज्ञान, कर्तव्याकर्तव्य, विवेक इत्यादि समस्त लोक कल्याणकारी तत्वों का उपदेश इस ग्रन्थ में वर्णित है। महाभारत में कौरव पाण्डवों की कथावस्तु तो मुख्य है ही किन्तु विविध आख्यान, उपाख्यान, प्रसंग सन्दर्भित उदाहरण दृष्टांत आदि के माध्यम से महर्षि व्यास ने सम्पूर्ण मानव जाति को धर्म, नीति, सदाचार, नीति, लोक व्यवहार नीति, राजनीति इत्यादि अनेक उपयोगी विषयों का नीतिगत उपदेश प्रदान किया है। कौरव पाण्डवों की कथा के साथ–साथ महाभारत का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष उपदेशात्मकता है। उपदेशों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। साधारण उपदेश, विशेष उपदेश। साधारण उपदेश के अन्तर्गत साधु, सज्जन, मित्र, सगे–सम्बन्धी, बन्धुवर्ग द्वारा कथित सामान्य व्यवहार या ज्ञान को लिया जा सकता है। विशेष उपदेश के अन्तर्गत विविध विद्वानों जैसे विदुर भीष्म, सनत्सुजात, श्रीकृष्ण इत्यादि द्वारा कथित नीतिगत उपदेश को लिया जा सकता है।

समस्त वेद, वेदांग, पुराण एवं धर्मशास्त्रों के अध्ययन से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह अकेले महाभारत के अध्ययन से प्राप्त हो सकता है। ''जिस प्रकार सागर और पर्वतों में हिमालय पर्वत को रत्नों की खान कहा जाता है, उसी प्रकार यह ग्रन्थ उपदेश रूपी रत्नों की खान है।''[1] महाभारत में उपदेशों का क्रमबद्ध में वर्णन नहीं मिलता है, अपितु जैसे प्रश्न किए गये उसी रूप में प्रश्नों के समाधान हेतु उपदेश प्रक्रिया को अपनाया गया है।

महाभारत में उपदेशात्मक तत्व–
आचार व्यवहार उपदेश–

महाभारत के आदिपर्व में लोकनीति का मनोहर उपदेश वर्णित है। ययाति अपने पुत्र को राज्य प्रदान करते हुए आचार व्यवहार का उपदेश देते हुए कहते हैं कि धन, लक्ष्मी एवं वैभव के मद में मनुष्य को कदापि अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिए। दीनता, शत्रुता,

क्रोध का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए। कुटिलता की प्रकृति का परित्याग कर किसी के भी साथ वैर भाव नहीं रखना चाहिए। माता, पिता, प्राज्ञजन, तपस्वी तथा क्षमाशील पुरूष का एक बुद्धिमान पुरूष को कभी भी अपमान नहीं करना चाहिए।

अक्रोधनः क्रोधनेभ्यो विशिष्टस्तथा तितिक्षुरतितिक्षोर्विशिष्टः।
अमानुषेभ्यो मानुषाश्च प्रधाना विद्वांस्तथैवाविदुषः प्रधानः।।[2]

कभी भी क्रोध नहीं करना चाहिए। असहनशील की अपेक्षा सहनशील पुरूष श्रेष्ठ होता है। किसी की निन्दा करने वाले के समस्त पुण्यकर्म नष्ट हो जाते है। अतएव कभी किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए। कटु एवं तीक्ष्ण वाणी का वक्ता व्यक्ति निर्धन एवं दुर्भाग्यशाली होता है। अतएव सभी प्राणीयों के प्रति दया और मैत्री का वर्ताब करते हुए मधुर वाणी का प्रयोग करना चाहिए।

न हीदृशं संवननं त्रिपु लोकेषु विद्यते।
दया मैत्री न भूतेषु दानं च मधुरा वाक्।।[3]

'अहिसां परमो धर्मः' इस उक्ति की सार्थकता का महाभारत में कई स्थान पर उदाहरण मिलता है। ब्राह्मण को कभी भी किसी भी काल में किसी भी स्थिति में हिंसा का अवलम्बन नहीं लेना चाहिए।

तस्मात् प्राणभृतः सर्वान् न हिंस्याद् ब्राह्मणः क्वचित्।[4]

लोभ – विनाश का सूचक है। अतएव महाभारत में लोभ के परित्याग का उपदेश महात्मा विदुर के द्वारा दिया गया है–

आयतिं च तदात्वं च उभे सद्यो व्यनाशयत्।
तदर्थकामस्तद्वत् त्वं मा द्रुहः पाण्डवान नृप।[5]

महाभारत में पुत्र मोह में किंकर्तव्यविमूढ धृतराष्ट्र को विदुर जी द्वारा आचार एवं व्यवहार का नीतिगत उपदेश प्रदान किया जाता है। अपने यथार्थ स्वरूप का ज्ञान, सहनशीलता, पराक्रम, धर्मपरायणता, शास्त्रविहित प्रसंशनीय कर्मों का सेवन करना निन्दित हेय कर्मों का परित्याग करना, विद्वान एवं धर्मज्ञ व्यक्ति के यही गुण होते हैं। वे अपने शास्त्र मर्यादित आचरण से लोक में श्रेष्ठ एवं उचित व्यवहार की स्थापना करते हैं।

शिष्टाचार –

इस उपदेशात्मक ग्रन्थ महाभारत में शिष्टाचार निर्वहण के विषय में विशद वर्णन प्राप्त होता है। महर्षि कौशिक और धर्म व्याघ के संवाद के अन्तर्गत शिष्टाचार का उपदेश प्रदान किया गया है। पाँच पवित्र वस्तुओं से युक्त आचरण करने वाला व्यक्ति शिष्ट कहा जाता है।

यज्ञो दानं तपो वेदाः सत्यं च द्विज सत्तम्।
पाञ्चैतानि पवित्राणि शिष्टाचारेषु सर्वदा।।[6]

सदाचार का निर्वहण करने वाले यज्ञ, स्वाध्याय में निरत शिष्ट पुरूषों द्वारा आचरणीय मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। शिष्ट पुरुष में त्याग भाव सदैव विद्यमान रहता है।

वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।
दमस्योपनिषत् त्यागः शिष्टाचारेषु नित्यदा।।[7]

अर्थात् वेद का मूल सत्य, सत्य का इन्द्रिय दमन, इन्द्रिय संयम का मूल त्याग है। और यह त्याग शिष्टजन के आचरण में सदैव स्थापित या स्थायी भाव के रूप में विद्यमान रहता है।

क्रोधशून्य न्यायोचित व्यवहार करने वाले पवित्र, सदाचारी, मनस्वी, गुरू के प्रति विनम्रशील इन्द्रिय को वश में करने वाले सत्वगुण से ओतप्रोत, निरभिमानी, विद्वानों का सम्मान करने वाले क्षमाशील, सत्यवादी में निरत सरल हृदय वाले, द्वेष भाव से रहित पुरूष श्रेष्ठ एवं शिष्ट आचरण के माध्यम से लोक में मर्यादा स्थापित कर लोक को सद्व्यवहार का उपदेश प्रदान करते हैं।

गुरूभक्ति उपदेश

गुरूबह्मा गुरू विष्णु के माध्यम से गुरू को परमोत्कृष्ट पद प्रदान करने वाली हमारी संस्कृति समादरणीय है। हिन्दी साहित्य में श्री गुरू को परमात्म से बढ़कर बताया गया है।

गुरू गोविन्द दोउ खडे, काके लागू पॉय।
बलिहारी गुरू आपने, गोविन्द दियो बताय।।

महाभारत में भी गुरू की भक्ति एवं गुरू के प्रति श्रद्धा भाव का उपदेश दिया गया है। माता–पिता बालक के शरीर को जन्म देते है, किन्तु उसे पवित्र, शुद्ध, अजर और अमर गुरू प्रदत्त उपदेश ही बनाता है अतएव शिष्य को सदैव गुरू का सम्मान करना चाहिए।

यः प्रावृणोत्य वितथेन वर्णा–
नृतं कुर्वन्नमृतं सम्प्रयच्छन्।
तं मन्येत पितरं मातरं च
तस्मै न द्रुह्येत् कृतमस्य जानन्।।[8]

अर्थात् गुरू परमात्मतत्वोपदेशक होता है। वह सत्यकर्म से समस्त वर्णों की रक्षा करता है। अतः गुरू को माता–पिता तुल्य समझना चाहिए एवं कदापि गुरू के प्रति द्रोह के भावों से हृदय को मलिनप्रायः नहीं करना चाहिए।

गुरू सेवा परम दुष्कर है, किन्तु जो जन विचलित हुए बिना निर्मल भाव से, गुरू निर्दिष्ट मार्ग पर गमन करते हैं निसंदेह परमोत्कृष्ट पद को प्राप्त करते है। गुरू की सेवा अत्यंत दुष्कर है इसका उल्लेख करते हुए कहा गया है–

देववंशान् ब्रह्मवंशान् पितृवंशाश्च शाश्वतान्।
संविभज्य गुरोश्चर्या तद् वै दुष्करमुच्यते।।[9]

अर्थात् गुरू निर्दिष्ट स्वकर्म से देवताओं, ब्रह्मर्षियों और पितरों को उनका भाग समर्पित कर गुरू की सेवा करना अति कठिन है।

गृहस्थ धर्मोपदेश

भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत आश्रम व्यवस्था का निर्धारण किया गया है। प्रत्येक आश्रम में तदनुरूप कर्तव्य का निर्धारण एवं समय सीमा निर्धारित की गई हैं प्रत्येक मानव को आश्रमानुकूल स्व कर्तव्य का परिपालन करना चाहिए। महाभारत में ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संयास आश्रम के साथ गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। गृहस्थाश्रम का निर्वहन किए बिना सन्यास आश्रम में प्रवेश करना सर्वथा निन्दनीय कहा गया है।

तपः श्रेष्ठं प्रजानां हि मूलमेतन्न संशयः।
कुटम्बविधिनानेन यास्मिन् सर्वे प्रतिष्ठितम्।[10]

अर्थात् तपस्या श्रेष्ठ कर्म है। निःसन्देह यही प्रजावर्ग का मूल कारण है किन्तु शास्त्रानुसार इस गृहस्थ धर्म में समस्त तपस्याओं का सन्निावास है।

गृहस्थाश्रम में ही मनुष्य शास्त्र निर्धारित कर्मों में प्रवृत्त होता है एवं देव, पितर और अतिथि सेवा में निरत रहता है।

पितृदेवातिथिकृते समारम्भोऽत्र शस्यते।
अत्रैव हि महाराज त्रिवर्गः केवलं फलम्।।[11]

अर्थात् त्रिवर्ग धर्म, अर्थ और काम की सिद्धी गृहस्थाश्रम में ही संभव है। इस आश्रम में स्थित मनुष्य के लिए यज्ञादि कर्मों को पूर्ण करने का उपदेश प्रदान किया गया है। वेद निर्धारित विधि–विधान का पालन करने वाले त्यागी का कभी भी विनाश नहीं होता है। मर्यादा में स्थित रहकर गृहस्थ धर्म का निर्वहन करना परम दुष्कर है –

गृहस्थाश्रमिणस्तञच यज्ञकर्म विरोधकम्।
तस्माद् गार्हस्थ्यमेवेह दुष्करं दुर्लभं तथा।।[12]

नारी मर्यादित व्यवहारोपदेश

शाण्डिली और सुमना के संवाद के माध्यम से नारी मर्यादित व्यवहार का उपेदश महाभारत में वर्णित है। जो स्त्री सदैव पति के प्रति पूर्णतया प्रेमनिष्ठ रहकर मधुर आलाप के साथ पति की सेवा को ही अपना धर्म समझती है, वही मोक्ष पद को प्राप्त करती है। अतएव स्त्री को पतिपरायणा एवं स्वधर्मपालक होना चाहिए। चुगलखोरी, किसी की निन्दा करना, अश्लील परिहास करना, कटु वचन से किसी को कष्ट पहुँचाना, गृहस्थधर्म का समुचित रूप से निर्वहण न करना, सास ससुर का तिरस्कार करना इत्यादि पतन के मार्ग है। इसलिए देवी–तपस्विनी शाण्डिली के कार्य व्यवहार के माध्यम से स्त्रियों को स्त्रीधर्म का उपदेश प्रदान किया है।

देवतानां पितृणां च ब्राह्मणानां च पूजने।
अप्रमता सदा युक्ता श्वश्रुश्वशुरवर्तिनी।।[13]

सत्यकर्मोपदेश –

उपदेशात्मक नीति तत्व के अमूल्य ग्रन्थ महाभारत में सत्यधर्म की उच्च कोटिक स्थापना की गयी है। सत्य से बढकर कोई धर्म नहीं है। महात्मा गाँधी ने भी सत्य, अहिंसा जैसे तत्वों के आधार पर देश को आजादी दिलायी।

सत्यात्मा भव राजेन्द्र सत्ये लोका प्रतिष्ठिताः।
तांस्तु सत्यमुखनाहुः सत्ये ह्यमृतमाहितम्।।[14]

अर्थात् सत्य ही सार रूप है। सत्य में समस्त लोक स्थित है। समस्त दम, त्याग इत्यादि तत्त्व भी सत्य स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त है। सत्य में ही अमृत तत्त्व स्थित है। अतएव यहॉ राजा धृतराष्ट्र के माध्यम से लोक को सत्य धर्म के अवलम्बन हेतु प्रेरित किया गया है। सत्य के यथार्थ रूप को पहचानकर मानव को सत्यपथ पर अग्रसर होने का उपदेश प्रदान किया गया है।

दानोपदेश –

धन का दान, भोग, नाश ये तीन गति बतलाई गई है। दान उत्तम गति होती है किन्तु दान यदि सत्पात्र को सही समय और उचित रूप से एवं पूर्ण आदर भाव सहित दिया जाए तभी उसकी श्रेष्ठता है। इस विषय में दान के स्वरूप, उसकी महत्ता, योग्यता और अयोग्यता का उपदेश महाभारत के वन पर्व में दृष्टिगोचर होता है। मार्कण्डेय ऋषि राजा युधिष्ठिर के पूछे जाने पर दान के विषय में कहते हैं – माता, पिता, गुरू की सेवा करना मानव का स्व कर्तव्य होता है। यह उसका धर्म है। अतएव इनको दिया गया धन इत्यादि दान की श्रेणी में नहीं आता, अपितु वह सेवाभाव या कर्तव्यनिर्वहण की श्रेणी में आता है। उसी प्रकार स्त्री तथा नौकर इत्यादि का पालन पोषण कर्तव्य की ही श्रेणी में आता है। अतएव पिता इत्यादि गुरूवृन्द, मिथ्यावादी पापकर्म करने वाले, कृतघ्न, शूद्र से यज्ञ कराने वाले, नीच ब्राह्मण, सेवक इत्यादि को दिया गया दान व्यर्थ है। भयपूर्वक व क्रोधसहित दिया गया दान भी अनुचित कहा जाता है।

परिचारकेषु सद् दत्तं वृथा दानानि षोडश।
तमोवृत्तस्तु यो दद्याद् भयात् क्रोधात् तथैव च।।[15]

राजधर्मोपदेश –

राजा को शास्त्र विहित स्वकर्तव्य का पूर्णरूपेण पालन करना चाहिए। साम, दाम, दण्ड और भेद इत्यादि राजनीति का समयानुकूल प्रयोग कर शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करना चाहिए। इस प्रकार राजधर्म के अनुसार मर्यादित व्यवहार करन वाला राजा देवत्व प्राप्ति के योग्य हो जाता है और जो राजा स्वधर्म का निर्वहन नहीं करता है वह नरकगामी होता है –

राजा चरति चेद धर्मं देवत्वायैव कल्पते।
स चेदधर्मं चरति नरकायैव गच्छति।।[16]

राजधर्म पूर्णतः दयाभाव पर अवलम्बित नहीं होता है। धर्मज्ञ राजा, समय, परिस्थिति, काल के अनुसार कर्तव्य का निर्वहण करता है।

आध्यात्मिक उपदेश

महाभारत में लौकिक व्यवहारिक एवं राजनीतिक परक उपदेशों के साथ–साथ आध्यात्मिक उपदेश भी उपलब्ध होते हैं। आध्यात्मिक उपदेश से मनुष्य के समस्त अज्ञान के बंधन टूट जाते हैं और व्यक्ति परमात्म तत्व क यथार्थ स्वरूप से भली भांति परिचित हो जाता है। महाभारत का महत्वपूर्ण अंश श्रीमद्भगवद् गीता मे श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को प्रदत्त ज्ञानोपदेश निःसन्देह अध्यात्म का सूक्ष्म चित्रण है। इन उपदेशों एवं इसमें वर्णित साधन व मार्ग का अवलम्बन लेने से व्यक्ति का कल्याण संभव है। आत्मा के यथार्थ स्वरूप से अवगत कराते हुए श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं –

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद् युध्यस्व भारत।।[17]

अर्थात् अविनाशी, नित्य, अपरिमेय आत्मा के दृश्यमान समस्त शरीर नाशवान कहे गये हैं। अतः देह नश्वर एवं विनाशशील और आत्मा अजर एवं अमर है। आत्मतत्व का ज्ञान शुद्ध एवं सूक्ष्म बुद्धि तथा अन्तःकरण की निर्मलता से ही संभव है। परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग बतलाते हुए निरासक्त भाव से कर्म करने का उपदेश महाभारत में श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन को दिया गया है। यथा–

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचार।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः।।[18]

परमात्मा की प्राप्ति ज्ञान, संयम, तप, योग, स्वाध्याय और प्राणायाम इत्यादि साधनों से संभव है। इस साधन प्रयोग से व्यक्ति का अन्तःकरण विशुद्ध हो जाता है। जो परमतत्व की प्राप्ति में मुख्य हेतु है।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्मसनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तमः।।[19]

अर्थात् योग, तप, संयम इत्यादि में निरत योगी ही परमात्मा को प्राप्त कर पाते हैं यज्ञ से विमुख मनुष्य तो कहीं भी सुख प्राप्ति में सक्षम नहीं होता है। जैसे जल में बर्फ, सुवर्ण में आभूषण, मिटटी मे घटादि पदार्थ व्याप्त रहते है, उसी प्रकार सम्पूर्ण जगत परमात्मा से

व्याप्त है। व्यक्ति अपने समस्त कर्मों को निरासक्त भाव से पूर्ण कर यदि परमात्मा को अर्पित कर देता है तो वह समस्त कर्मफल से विमुक्त होकर परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

महाभारत में वर्णित नीतिपरक उपदश प्रत्येक क्षेत्र में मानव को दिशा प्रदान करने वाले हैं।

संदर्भ ग्रंथ – सूची

1. महाभारत, स्वर्गारोहण पर्व 5/65
2. महाभारत, आदि पर्व, 87/6
3. महाभारत, आदि पर्व 87/2
4. महाभारत, आदि पर्व, 11/14
5. महाभारत, सभापर्व, 62/14
6. महाभारत, वनपर्व 207/62
7. महाभारत, वनपर्व, 207/67
8. महाभारत, उद्योग पर्व, 44/09
9. महाभारत, शान्ति पर्व, 11/09
10. महाभारत, शांतिपर्व, 11/21
11. महाभारत, शांतिपर्व, 12/18
12. महाभारत, शांतिपर्व, 12/22
13. महाभारत, अनुशासन पर्व, 123/10
14. महाभारत, उद्योग पर्व, 43/37
15. महाभारत, वन पर्व, 200/09
16. महाभारत, उद्योग पर्व, 132/13
17. महाभारत, भीष्म पर्व, 26/18
18. महाभारत, भीष्म पर्व, 27/10
19. महाभारत, भीष्म पर्व, 28/31